लोकतंत्र के लिए शिक्षा
स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता

– अंजलि नरोन्हा, एकलव्य, भोपाल

सामाजिक विज्ञान दुनिया भर के स्कूलों में किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाता है। कभी इसे पर्यावरण अध्ययन कहा जाता है, जैसा कि भारत के मौजूदा प्राथमिक स्कूलों में, कभी–कभी यह – इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र – के रूप में माध्यमिक स्कूल तक और फिर इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के रूप में हाईस्कूल में पढ़ाया जाता है। आजकल कई देशों में यह 'नागरिक शिक्षा' या फिर 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन' नाम से जाना जाता है, जैसा कि भारत में भी है। कुछ देशों में, और कुछ परिस्थितियों में सामाजिक अध्ययन नाम का विषय भी पढ़ाया जाता रहा है और कुछ वैचारिक दृष्टियाँ ऐसी हैं जो इतिहास व भूगोल को सामाजिक विज्ञानों से अलग रखते हुए उन्हें पृथक विषय मानती हैं, जबकि अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र को वे सामाजिक विज्ञानों का हिस्सा मानती हैं। इस लेख के उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए मैं इस मुद्दे को आगे नहीं बढ़ाऊँगी।

सामाजिक विज्ञान से मेरा अर्थ है वे सभी विषय जो समाज और सामाजिक जीवन के कुछ या सभी पहलुओं को किसी न किसी चश्मे से देखते हुए किए जाने वाले उनके विश्लेषण से ताल्लुक रखते हों। इस प्रकार, इतिहास सामाजिक विज्ञान का हिस्सा है क्योंकि उसमें समाज के विभिन्न पहलुओं में निरंतरता और बदलावों का, तथा समय के साथ–साथ उनके बनते–बदलते अंतर्सम्बन्धों का विश्लेषण होता है, भूगोल में देश–दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण होता है, अर्थशास्त्र में आर्थिक पक्षों का विश्लेषण करने के लिए सिद्धान्तों व पद्धतियों को विकसित व लागू किया जाता है, समाजशास्त्र में यही सब सामाजिक पहलुओं के लिए होता है और राजनीति विज्ञान, जिसमें यही राजनैतिक पहलुओं के लिए होता है। प्राथमिक स्कूली स्तर तक, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान पृथक विषयों की तरह से नहीं पढ़ाए जाते पर किसी न किसी तरह से ये नागरिकशास्त्र, नागरिकता शिक्षा या सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों के साथ ही समेकित कर दिए जाते हैं।

हम सामाजिक विज्ञानों को किस तरह समझते हैं, इसका विचार किए बगैर अक्सर पालकों के मन में और आमतौर पर समाज के भीतर भी यह सवाल उठता है कि क्या आज की तकनीकतंत्रीय दुनिया में लोगों की जिन्दगी में सामाजिक विज्ञान की कोई प्रासंगिकता है भी या नहीं। लोग पूछते हैं कि उच्चतर माध्यमिक या फिर कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान का कोई विषय चुनने की स्थिति में हमारा बच्चा आगे क्या करेगा ? उसके सामने नौकरी की क्या संभावनाएं होंगी? स्कूल या कॉलेज में शिक्षक बनने की, शोधकर्ता या अध्येता बनने की, या फिर प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से किसी सरकारी सेवा क्षेत्र में जाने की ? या फिर वह किसी प्रबंधन क्षेत्र में जाए, खासतौर पर मानव संसाधन प्रबंध के क्षेत्र में। ये सारे विकल्प तो इंजीनियरिंग के स्नातकों और मेडिकल के छात्र–छात्राओं के लिए भी खुले होते हैं तो फिर सामाजिक विज्ञान के विषयों को क्यों चुनें जब तथाकथित तकनीकी क्षेत्रों के विकल्प खुले हुए हैं ?

यह दृष्टिकोण ऊपर से शुरू होकर रिसते हुए नीचे की कक्षाओं में भी पहुँच जाता है जहाँ विद्यार्थियों (और पालकों) का रवैया सामाजिक विज्ञानों में पास भर हो जाने का होता है। बिरले ही यह बात पूछी जाती है कि किस तरह सामाजिक विज्ञान विद्यार्थी को बेहतर व्यक्ति बनाने में योगदान दे सकता है, या उनमें इतनी सामर्थ्य पैदा कर सकता है कि वे समाज की बेहतरी में योगदान दे सकें, या कि सामाजिक विज्ञानों के स्कूली अध्ययन व अध्यापन द्वारा किसी लोकतंत्र को बनाए रखने व उसे और विकसित करने में किस तरह से मदद मिल सकती है। कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल करने को, स्कूली स्तर पर मिलने वाली सामाजिक विज्ञान की अनिवार्य शिक्षा से अलग करके देखे जाने की जरूरत है।

यह सब कह चुकने के बाद, मैं अब इस लेख में, स्कूली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की विषयवस्तु तथा उसे पढ़ाने की

पद्धति की आज के दौर में प्रासंगिकता पर ध्यान केन्द्रित करूँगी जिसमें नागरिक शास्त्र/नागरिक शिक्षा/सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों का खास हवाला होगा। मेरा मुख्य ध्यान लोकतंत्र के निर्माण में, उसे बनाए रखने में और विकसित करने में सामाजिक विज्ञान की शिक्षा की प्रासंगिकता पर रहेगा। ऐसा करते वक्त, मैं सामाजिक विज्ञान शिक्षा को समाज की वर्तमान शक्ति संरचना तथा उसके ऊँच–नीच वाले, सामन्ती और विशिष्टता वाले रवैयों से भरे आचरण की नैतिक धारणाओं, जिन्हें खुद शिक्षकों व पालकों ने ही वैधता प्रदान की है, से मिलने वाली चुनौतियों को चिन्हित करूँगी।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा के रूप में सामाजिक विज्ञान शिक्षा

लोकतांत्रिक समाज इस अर्थ में काफी हद तक 'विकसित' समाज होते हैं कि वे व्यक्ति विशेष से व्यवहार रूप में कुछ निश्चित तौर–तरीकों, नैतिकता, क्षमताओं और योग्यता की माँग करते हैं जिसके लिए मनुष्यों में मौजूद ऐसी नैसर्गिक प्रवृत्तियों के बहुत अधिक उदात्तीकरण की जरूरत होती है जो कि ऊपर लिखी बातों के प्रतिकूल हों; ताकि लोकतंत्र का सिद्धान्त वास्तव में लोकतंत्र की हकीकत बन जाए। केवल एक खास तरह के सचेतन प्रयास (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) के द्वारा ही लोकतंत्र को सिद्धान्त से हकीकत बनाने के लिए जरूरी आचरण, योग्यता और मूल्य विकसित किए जा सकते हैं और बच्चों के मानस में बैठाए जा सकते हैं।

यदि इतिहास पर गौर किया जाए तो आधुनिक लोकतंत्र, असमान शक्ति–समीकरणों और कुछ लोगों के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण के खिलाफ संघर्ष के रूप में उभरा था जिसने समकालीन ऊँच–नीच वाले सामंती और अधिकारवादी ढाँचों को चुनौती दी। अब इसे अक्सर उन्हीं लोगों के बीच प्रचलित, उनके द्वारा अवचेतन रूप से आत्मसात कर लिए गए वर्ग–आधारित मूल्यों, नीतियों और आचरणों से चुनौती झेलना पड़ती है जिन्होंने खुद ही सबसे पहले लोकतंत्रीकरण की माँग में भागीदारी की थी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि खुद हमारा समाजीकरण एक ऐसी वृहद् ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है, जो असमानताओं व वर्गीकरणों को योग्यता में अंतरों या 'ईश्वर प्रदत्त' भाग्य का नाम देकर वैधता प्रदान कर देती है। और सम्भवतः इसका मूल प्रत्येक व्यक्ति की खुद की सराहना की तथा दूसरों की जिन्दगी पर नियंत्रण की जन्मजात चाहत में भी छुपा हुआ है। इसलिए, व्यवहार में जितना संघर्ष सामाजिक क्षेत्रों व प्रक्रियाओं में लोकतंत्र की स्थापना करने का है उतना ही संघर्ष इसे व्यक्तियों के भीतर स्थापित करने का भी है। इस संघर्ष को ही कक्षाओं के भीतर और शैक्षणिक अनुभवों में जगह दिए जाने की जरूरत है। यह कैसे होगा, इसकी चर्चा करने से पहले आइए हम इस टेढ़े–मेढ़े मार्ग से लौटकर यह देखें कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिन पर लोकतंत्र आधारित होता है।

समानता : यह लोकतंत्र का केन्द्रीय और सबसे प्रमुख विचार है। लोकतंत्र में सभी व्यक्तियों को एक समान मानकर व्यवहार किया जाता है – एक व्यक्ति, एक मत का सिद्धान्त समानता के इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हालाँकि, हम सभी जानते हैं कि व्यावहारिक रूप से अधिकतर लोकतांत्रिक समाजों में इस राजनैतिक समानता को आर्थिक व सामाजिक समानता का साथ नहीं मिलता है। वस्तुतः, आर्थिक व सामाजिक असमानता के कारण संविधान के द्वारा सिद्धान्त रूप में प्रदत्त 'राजनैतिक समानता' प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होती देखी जाती है। सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा जो सभी क्षेत्रों में समानता लाने का प्रयास करे, और जिससे समाज में ऐसे आचरणों का विकास हो जो अलगाव या भेदभाव पैदा करने वाली नीतियों को चुनौती दे सकें। उदाहरण के लिए, मूल्य चुकाने की सामर्थ्य पर निर्भर भेदभावपूर्ण स्वास्थ्य व शैक्षणिक सुविधाएँ, या ऐसे सम्भ्रान्त सार्वजनिक स्थानों जैसे हवाईअड्डों और होटलों से ऑटो रिक्शा जैसे यातायात साधनों का दूर रखा जाना, या उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही की माँग करना जो विभिन्न जातियों तथा वर्गों के आपस में मिलने–मिलाने, शादी–विवाह करने आदि को हिंसा द्वारा रोकते हैं, इत्यादि। इस तरह के आचरणों का विकास एक महत्वपूर्ण नागरिक समुदाय के लिए आवश्यक है। सभी के प्रति एक–सा आदर भाव लोकतंत्र के विचार का अभिन्न हिस्सा है।

न्याय : समानता के सिद्धान्त से ही सभी के लिए समान न्याय का सिद्धान्त निकलता है, भले ही समाज में व्यक्तियों के 'दर्जे' अलग–अलग हों। यह नहीं चलेगा कि कुछ लोग काफी कुछ ऐसा करके बच निकलें जिसे 'आधिकारिक' रूप से गलत माना जाता है।

स्वतंत्रता : लोकतंत्र का एक अन्य बुनियादी सिद्धान्त है सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता। इसीलिए कोई भी लोकतांत्रिक संविधान जैसे कि भारतीय संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, देश में कहीं भी आने–जाने की स्वतंत्रता, भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने की स्वतंत्रता आदि को सुनिश्चित करता है। एक

अन्तर्निहित मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी खुद की 'स्वतंत्र इच्छा' का उत्पाद होता है। हालाँकि, जैसा कि हम सब जानते हैं समाज में शान्तिपूर्ण ढंग से रहने के लिए, हमें अपनी–अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को इस ढंग से सीमित करना पड़ता है कि वे दूसरों की स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण न करें। लेकिन फिर भी यह किसी एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच की बात नहीं है कि किस सीमा तक किसी स्वतंत्रता को कम किया जाए – बल्कि यह सबको मिलने वाली अलग–अलग स्वतंत्रताओं के बारे में एक सामूहिक धारणा की बात है।

भागीदारी : लोकतंत्र के बारे में सबसे ज्यादा उद्धृत उद्धरण अब्राहम लिंकन के गैटिसबर्ग उद्‌बोधन से लिया गया है जो लोकतंत्र को 'जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए सरकार' के रूप में परिभाषित करता है। इसलिए, लोकतंत्र में नागरिकों की भागीदारी के द्वारा ही नीतियों व कानूनों का निर्माण, उनकी समीक्षा तथा संशोधन किया जाता है। यदि नागरिकों का रवैया बेहतर और ज्यादा प्रासंगिक नीतियों की रचना की प्रक्रिया में खुद शामिल होने और भागीदारी करने का 'सिरदर्द उठाने का नहीं है', तो खतरा यह रहता है कि ऐसी नीतियों व कार्यक्रमों का फल केवल उन चन्द लोगों को मिलेगा जो इसमें भागीदारी करते हैं।

लोगों का प्रतिनिधित्व तथा उनके प्रति उत्तरादायित्व :

आधुनिक लोकतंत्र प्रत्यक्ष लोकतंत्र न होकर प्रतिनिधित्व पर आधारित होते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष लोकतंत्रों के हिसाब से राष्ट्र बहुत बड़े होते हैं। इस तरह यह जरूरी है कि लोग प्रतिनिधिक नेतृत्व का 'सही' अर्थ समझें, जो कि लोगों के मत द्वारा चुने गए प्रतिनिधि का 'शासन' नहीं होता बल्कि उन लोगों के प्रति उसका उत्तरदायित्व व जवाबदेही होती है जिन्होंने उसे नेता चुना। इसका अर्थ हुआ कि नेतृत्व बेलगाम नहीं होता तथा जो चाहे वह नहीं कर सकता। उसे संविधान द्वारा, नीतियों द्वारा और नागरिकों की सक्रिय तथा समालोचनात्मक भागीदारी द्वारा सीमित किया जाता है।

यदि ये सब एक स्वस्थ और सुदृढ़ लोकतंत्र के आधार हैं तो फिर जरूरी है कि नागरिक :

- सभी लोगों को समान नजर से देखें,
- ऐसे मामलों को उठाने की क्षमता रखें जहाँ लोगों से असमान व्यवहार किया जा रहा हो,
- गलत बातें सुधारने के तरीके ढूँढ़ने की कोशिश करने का रवैया रखें, न कि ऐसी बातों के प्रति उदासीन या दुनियादारी वाला मतलबी रवैया रखने का,
- नीतियों, नियमों व कानूनों का समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण कर सकें क्योंकि इनसे लोग प्रभावित होते हैं,
- विवादों को एक साथ मिलकर सुलझाने के तरीके ढूँढ़ सकें, परस्पर सहयोग हेतु जरूरी योग्यताएँ विकसित करने के, तथा साथ मिलकर काम करने के ढंग तलाश सकें, और
- संवाद – यानी दूसरे लोगों के दृष्टिकोणों को सुनना–समझना व सर्वसम्मति बनाना आदि – की क्षमताएँ विकसित कर सकें।

सामाजिक विज्ञान पाठयक्रम और उसकी कक्षा के लिए इस सबका क्या आशय हुआ ?

इसके निहितार्थ पाठ्यक्रम और कक्षा शिक्षण, दोनों के लिए हैं। सामाजिक विज्ञान शिक्षा के माध्यम से ऊपर उल्लिखित गुण विकसित करने के लिए बच्चों को ऐसे समतावादी सामूहिक तरीकों की मदद से विवादास्पद मुद्दों के समीक्षात्मक विश्लेषण करने का अनुभव मिलना चाहिए जिनसे वे विविधता तथा दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करना सीखें। साथ ही उन्हें सहयोगात्मक तरीके से काम करने के मौके भी मिलना चाहिए। ऐसे अनुभव के माध्यम से ही वे समानता, सभी के लिए सम्मान तथा लोकतांत्रिक न्याय के आदर्श विकसित कर पाएँगे और अपने भीतर यह दृढ़ विश्वास पैदा कर पाएँगे कि लोकतांत्रिक कार्यवाही के द्वारा स्थितियों को बदलकर बेहतर बनाया जा सकता है।

ऐसी प्रक्रियाओं को समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ ठोस ढंग से काम करके विकसित किया जा सकता है, और ऐसे समीक्षात्मक चश्मे की मदद से इतिहास व भूगोल की समझ पैदा की जा सकती है। यह ठोस काम अध्ययन, चिन्तन, चर्चाओं और अनुभव के द्वारा किया जा सकता है।

भारतीय स्कूलों में पारंपरिक सामाजिक विज्ञान शिक्षा का आधार है बच्चों को ढेर सारी जानकारी प्रदान करना जिसे बच्चों को मूल्यांकन के समय वैसा ही बताना पड़ता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्थाएँ विवादों से भी बचना चाहती हैं। जबकि हमारे

सामने स्थिति ऐसी है जहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक विज्ञान लोकतंत्र के उद्देश्यों को पूरा करता है, कक्षाओं में विवादास्पद विषयों को लाना ही होगा। और फिर उनका विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण करना होगा ताकि उन्हें सही ढंग से समझा जा सके और उनके बेहतर समाधान ढूँढ़े जा सकें। इसे प्रो. कृष्णकुमार ने अपनी किताब 'लर्निंग फ्रॉम कॉन्फ्लिक्ट' में विस्तार से समझाया है। चुनाव वास्तव में किस तरह होते हैं, निर्धारित प्रक्रियाओं द्वारा नागरिक जरूरी मुद्दों – जैसे बड़े बाँधों के पर्यावरणीय व सामाजिक प्रभाव, वाहनों के यातायात में अनियंत्रित इजाफा, या कि राष्ट्रकुल खेलों के आयोजन जैसी भी कोई बात – के बारे में क्या करते हैं या क्या कर सकते हैं, इस तरह के ढेर सारे उदाहरण देने पर बच्चों का विभिन्न, और अक्सर विरोधाभासी, दृष्टिकोणों से पाला पड़ता है जिससे उन्हें किसी भी मुद्दे के बारे में और गहराई में जाकर सामूहिक रूप से पड़ताल करने की प्रेरणा मिलती है।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा की जरूरत यह भी है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाए तथा निर्णयों व प्रस्तावों से भागीदारों, यानि कि विद्यार्थियों, में सफलता का भाव पैदा हो। विद्यार्थियों में सफलता के ऐसे भाव के न होने पर वे, जो भविष्य के नागरिक हैं, लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता की बजाय दोषदर्शी रवैया अख्तियार कर लेंगे, जिससे कि लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान शिक्षा का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

लोकतंत्र को विकसित करने के लिए अच्छी सामाजिक विज्ञान शिक्षा जरूरी है। और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षातंत्र, शिक्षक व पालकों की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों में गहरी आस्था हो। यह विश्वास–कि सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा ही झगड़ों तथा मुश्किल परिस्थितियों को मानवीय व अहिंसक ढंग से सुलझाया जा सकता है – लोकतंत्र की सफलता के लिए बेहद जरूरी है। इसके अलावा, एक सच्ची लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर ही, निरंतर और ऊँचे स्तरों पर पहुँचते जाने का अन्तर्निहित सामर्थ्य होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम ऐसी सामग्री और तरीके विकसित करे जो लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों और आचरणों को सफलतापूर्वक विकसित कर सकें। पाठ्यक्रम द्वारा बच्चों के बीच सार्वजनिक मुद्दों पर सहयोगात्मक ढंग से, सहकार्यता पर आधारित, समतावादी सामूहिक कार्य कर पाने के लिए जरूरी क्षमताओं का विकास किया जाना चाहिए।

हमारे पास न सिर्फ कुछ खास स्कूलों के बल्कि कुछ वृहद् पाठ्यचर्याओं के भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जो इस तरह से कार्य करते हैं। एनसीईआरटी का मिडिल व हाईस्कूल स्तर की हालिया पाठ्यक्रम व किताबें ऐसा ही एक उदाहरण हैं। मिडिल स्कूल की इतिहास, तथा सामाजिक व राजनैतिक जीवन विषयों की किताबें तथा हाईस्कूल स्तर की इतिहास, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र की किताबों में कुछ ऐसी केस स्टडीज़ (मामलों के अध्ययन) का प्रयोग किया गया है जो विवादों को उपजाती हैं; उनमें दृष्टिकोणों की भिन्नता है और वे उन सामूहिक कार्यवाहियों का भी जिक्र करती हैं जो कुछ हद तक सफल रही हैं। देशभर में कई स्कूल हैं, जिनमें से कुछ के अनुभव इस अंक में बताए गए हैं, जैसे शिशु वन (मुम्बई), नम्मा शाले (बंगलौर), पूर्णोदय (बंगलौर), विक्रमशिला (कोलकाता), शिक्षा मित्र (कोलकाता), सेन्टर फॉर लर्निंग (हैदराबाद व बंगलौर), आधारशिला (सेंधवा) और कई अन्य, जो खुद अपना पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री तैयार करते हैं, पाठ्यचर्या के अंग के रूप में इस तरह के मुद्दों की कक्षा में चर्चा आयोजित करते हैं और अपने बच्चों को बीटी बैंगन, जलवायु परिवर्तन या आम आदमी पर राष्ट्रकुल खेलों के प्रभाव जैसे मुद्दों को उठाने वाले मंचों पर भाग लेने के लिए भी ले जाते हैं। एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को भी समालोचनात्मक व विचारशील लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम विकसित करने की संसाधन सामग्री के रूप में देखा जा सकता है।

न तो एनसीईआरटी की नई किताबों की पद्धति और न ही ऊपर उल्लिखित स्कूलों या शैक्षणिक समूहों का तरीका किसी भी ढंग से पक्षपाती है। वे उसी हद तक राजनैतिक हैं जहाँ तक कि लोकतंत्र एक राजनैतिक आदर्श है जो कि हमारे राष्ट्र के संविधान का आधार है। इस देश के नागरिक होने के नाते, क्या यह हमारा दायित्व नहीं है कि हम संविधान के सही पालन को, और इस तरह से लोकतंत्र के सही पालन को सुनिश्चित करें? तो फिर लोगों द्वारा उठाए गए ऊपर उल्लिखित कदमों को पक्षपाती क्यों माना जाए जबकि ऐसे कदमों या कार्यों को, जो वाकई में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति अनैतिक हैं, वैध और मुख्यधारा का माना जाता है?

समालोचनात्मक नागरिकता के लिए दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की चुनौतियाँ

दृष्टिकोणों के विरोधाभास इस तथ्य में मौजूद होते हैं कि समाज के बदलने के ढंग उतने औपचारिक व सीधे–सादे नहीं होते जितने कि कागज पर बदल दी जाने वाली नीतियाँ होती हैं। हकीकत यह है कि सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से भारत बहुत हद तक ऊँच–नीच के क्रम पर आधारित, (आर्थिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक ढंग से) सामन्ती और जाति–आधारित देश है। प्रत्येक मनुष्य की कई पहचान होती हैं – परिवार की, धर्म की, अपने सामाजिक समूह की, राष्ट्र की, व्यवसाय की। हालाँकि भारत 60 वर्ष पूर्व एक लोकतंत्र बन गया था, लेकिन वह अभी भी कार्यकारी व सांस्कृतिक रूप से काफी हद तक एक जाति–आधारित, सामन्ती समाज है। संस्थागत प्रक्रियाएँ जो लोकतंत्र को, खासतौर पर शिक्षा प्रणाली को मजबूत बना सकती थीं, वस्तुतः इस सांस्कृतिक बोझ के नीचे झुक गईं। शिक्षक, पालक, सामुदायिक नेता, सभी ऐसी सामाजिक विज्ञान शिक्षा को तरजीह देना चाहेंगे जो सत्ता के प्रति मजबूत समालोचनात्मक रवैया रखने के बजाय उसका अभिवादन करती हो, और विवादों को बच्चों के दिमागों से दूर ही रखती हो। इसलिए वे लोग, जिनका खुद अपने आचरण में लोकतांत्रिक होना जरूरी है, तथा जिनसे यह अपेक्षा होती है कि वे बच्चों के भीतर भी ऐसे मूल्यों व गुणों को पैदा कर उन्हें बढ़ावा देंगे, दरअसल खुद ही लोकतांत्रिक आचरण विकसित व प्रोत्साहित करने के लिए किए जाने वाले प्रयासों को कमजोर करने में सक्रिय रूप से भागीदार होते हैं। इसके विपरीत, यदि कुछ थोड़े शिक्षक समालोचनात्मक और विचारशील सोच को कक्षा के अन्दर अपनाते हैं, तो दूसरे शिक्षक, पालकगण और समुदाय के सदस्य उन्हें प्रोत्हासित करने व सहयोग देने की बजाय उनकी आलोचना करते हैं और उन्हें अलग–थलग कर दिया जाता है। इसलिए, सामाजिक विज्ञान शिक्षक अक्सर किसी जाति–आधारित, ग्रामीण स्कूल की कक्षा में स्कूली निर्णय प्रक्रिया के लिए प्रतिनिधित्व पर आधारित बच्चों की किसी व्यवस्था को लागू करने से डरते हैं क्योंकि अगर वंचित वर्गों से कोई लड़की या लड़का 'चुन' लिया जाए तो विवाद खड़ा हो जाता है।

संभ्रांत स्कूलों की कक्षाएँ, जहाँ प्रगतिशील कार्यपद्धतियों का उपयोग हो रहा होता है, सामाजिक रूप से विविधता वाली मिश्रित कक्षाओं की बजाय एकरूपी सम्भ्रांत कक्षाएँ बन जाती हैं। ऐसी कक्षाओं की वर्ग/जाति सम्बन्धी एकरूपी प्रति के कारण प्रतिनिधित्व की इसी तरह की गतिविधि कम विवादास्पद रहती है क्योंकि वह यथास्थिति को उसी ढंग से चुनौती नहीं देती जैसी चुनौती उसे ग्रामीण परिवेश में मिलती है।

इससे फिर अलग–अलग प्रकार के स्कूलों के लिए अलग–अलग ढंग की सामाजिक विज्ञान शिक्षा की संभावना का जन्म होता है, और यह भेद ही समानता के उस सिद्धान्त के लिए अनैतिक हो जाता है जो कि किसी भी लोकतांत्रिक समाज का आधार होता है।

निष्कर्ष

जो बात मैं कहना चाह रही हूँ वह यही है कि स्कूलों में वृहद् स्तर पर लोकतंत्रात्मक सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या और शिक्षण के व्यापक कार्यान्वयन के द्वारा ही किसी लोकतांत्रिक समाज को बनाए रखा जा सकता है और उसमें गुणात्मक विकास किया जा सकता है। कोई भी दूसरा विषय इस भूमिका को नहीं निभा सकता। समालोचना पर आधारित चिन्तनशील सामाजिक विज्ञान अध्ययन व अध्यापन की प्रमुख प्रासंगिकता यही है। जिस किस्म के सामाजिक विज्ञान को मैंने ऊपर विस्तार से समझाने की कोशिश की है, उसे व्यावहारिक हकीकत बनाने के लिए उसके पालन करने वालों को शैक्षणिक, बौद्धिक और सामाजिक सहयोग के साथ–साथ संसाधनों, मित्र समूहों की आवश्यकता होती है। मुझे पूरा भरोसा है कि इस पत्रिका के पाठक इस दिशा में कदम उठाएँगे।

सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा न केवल समालोचनात्मक व चिन्तनशील लोकतांत्रिक नागरिकों के गुणों का विकास करेगी, बल्कि उनके भीतर किसी भी कार्यक्षेत्र में, समूह में रहकर काम करने की क्षमता, तथा लगातार बदलती दुनिया में विवेचनात्मक रूप से विवेकपूर्ण (और इसलिए मेरे हिसाब से बेहतर) चुनाव करने की क्षमता भी पैदा करेगी।

दूसरे प्रकार के सामाजिक विज्ञान शिक्षण (जानकारियाँ दे देना, अमुक–अमुक चीजों या लोगों के बारे में जानना आदि) की, मेरे हिसाब से, स्कूली शिक्षा के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है और इसलिए बच्चों को उस बोझ से बचाया जा सकता है।

(अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, बंगलौर द्वारा प्रकाशित शैक्षिक पत्रिका 'लर्निंग कर्व' के सामाजिक अध्ययन विशेषांक से साभार।)

●●●